इकाई 19 जातिगत पहचान: विशेषताबोधक और अन्योन्य-क्रियात्मक सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप:

- जाति की आरंभिक व्याख्याओं के बारे में बता सकेंगे;
- जाति के अध्ययन में अपनाए जाने वाले विशेषताबोधक सिद्धांत के बारे में बता पाएंगे;
- जाति की अन्योन्य-क्रियात्मक व्याख्या पर रोशनी डाल सकेंगे; तथा
- विशेषताबोधक और अन्योन्य-क्रियात्मक सिद्धांतों की कुछ सीमाओं के बारे में जान सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

जाति पहचान का भारत के किसी भी गांव, कस्बे या शहर के सामाजिक ताने-बाने से बड़ा घनिष्ठ संबंध है। इस इकाई में हम आपको श्रेणीकरण-क्रम की व्याख्या की दिशा में किए गए प्रमुख प्रयत्नों के बारे में बताएंगे और उनका विश्लेषण करेंगे, जो हमें जाति-संरचना

में सर्वव्यापी नजर आता है। इन नजरियों से आपको परिचित कराने के लिए हम आपको जाति की आरंभिक धार्मिक और समाजशास्त्रीय व्याख्याओं के बारे में बताएंगे। इससे *विशेषताबोधक* नजरिए के लिए आधार तैयार होगा, जो जाति क्रम-परंपरा का विश्लेषण उसके विभिन्न अपवर्तनीय विशेषताओं की रोशनी में करता है। इसके बाद हम जाति क्रम-परंपरा के अन्योन्य-क्रियात्मक नजरिए पर दृष्टिपात करेंगे। इकाई के अंत में इन दोनों नजरियों की सीमाओं पर प्रकाश डालेंगे।

19.2 जाति की आरंभिक व्याख्याएं

जाति की उत्पत्ति को लेकर अनेक प्रकार की व्याख्याएं दी गई हैं। उसकी आरंभिक व्याख्या अक्सर जाति के 'नैसर्गिक' गुणों या 'अदेय' लक्षणों की अवधारणा के इर्द-गिर्द घूमती हैं। इनमें से कुछ व्याख्याओं का हम यहां विश्लेषण करने जा रहे हैं, इसलिए उससे पहले इन वेशेषताओं के बारे में जान लेना उचित रहेगा। जाति की ये विशेषताएं हमें धार्मिक सिद्धांतों और पंथ निरपेक्ष समाजशास्त्रीय व्याख्याओं से मिली हैं। आइए सबसे पहले धार्मिक सिद्धांत जाति के बारे में क्या कहते हैं, यह जानें।

19.2.1 धार्मिक व्याख्याएं

हिंदू धर्म में जाति की उत्पत्ति को लेकर जो व्याख्या दी गई है वह दैवी उत्पत्ति सिद्धांत है। इस सिद्धांत की धारणा ऋग वेद से लेकर समकालीन भगवद्गीता में उद्धृत श्लोकों से विकसित हुई है। मगर यहां यह कहना जरूरी है कि यह ब्राह्मणवादी व्याख्या है जिसे कई समुदाय नहीं मानते।

बॉक्स 19.01

कहा जाता है कि परम पुरुष ने अपनी नररूपी काया से विभिन्न वर्णों की 'सृष्टि' की। इसके उसके अनुसार मस्तक से ब्राह्मण, वक्षस्थल से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई। 'श्रेणी क्रम' का आशय या क्रम-परंपरा के अनुसार उनका क्रम निर्धारण उस कार्य से जुड़ा था, जो प्रत्येक वर्ण को पूरा करना होता था। ब्राह्मणों को सर्वोच्च दायित्व या कार्य सौंपे गए। उनका काम ज्ञान को संजोना और पुरोहित संबंधी कार्यों को पूरा करना था। क्षत्रिय का कर्तव्य बाहरी आक्रमणों से समाज की रक्षा, प्रशासन में स्थायित्व लाना और आम प्रजा की रक्षा करना था। वैश्य का कार्य व्यापार और वाणिज्य का सच्चाई और निष्ठा से संचालन करना था। इस क्रम-परंपरा में सबसे निचले पायदान पर माने जाने वाले शूद्र सेवा-चाकरी वर्ण थे, जिनसे अपने से सभी ऊंचे वर्णों की जरूरतों की पूर्ति करने की अपेक्षा की जाती थी।

यह एक चतुर्वर्ण-व्यवस्था है। दैवी उत्पत्ति के सिद्धांत के अनुसार ये वर्ण आगे चलकर जातियों या जाति समूहों में बंट गए जिनके अपने विशिष्ट नैसर्गिक गुण थे। पहले तीन जाति-समूहों को 'द्विज' श्रेणी में रखा गया और उन्हें यज्ञोपवीत संस्कार, जिसे हम बोलचाल की भाषा में जनेऊ धारण कहते हैं, उस के द्वारा अपनी-अपनी जाति में प्रवेश मिलता था। प्रत्येक समूह एक खास किस्म का पेशा अपना कर उसमें महारत हासिल करने लगा। वह अन्य जाति के काम को नहीं कर सकता था। इस क्रम-परंपरा की अभिव्यक्ति नैसर्गिक-गुणों और परस्पर-व्यवहार दोनों तरह से होती थी।

जाति की दूसरी धार्मिक व्याख्या गुण सिद्धांत पर आधारित है, जो हमें भगवद्गीता सहित कई धार्मिक ग्रंथों से जानने को मिलता है। यह सिद्धांत मनुष्य में पाए जाने वाले विशिष्ट *नैसर्गिक गुणों* की बात करता है। इस सिद्धांत के अनुसार मनुष्य के ये तीन गुण हैं:

i) 'सत्व' यानी सत्य, ज्ञान, सहृदयता, सद्गुण और स्फूर्ति का गुण

ii) 'राजस' यानी कर्मठता, साहस, शौर्य, बाहुबल, सत्ताधिकार और उमंग का गुण

iii) 'तामस' यानी उदासी, नीरसता, मूर्खता और अकर्मण्यता का गुण।

क्रम परंपरा में ब्राह्मणों को सात्विक, तो क्षत्रियों को ब्राह्मणों से नीचे 'राजसिक' श्रेणी में रखा गया था। इसके सबसे निचले पायदान पर 'तामसिक' शूद्रों को रखा गया था।

19.2.2 समाजशास्त्रीय व्याख्या

धार्मिक व्याख्याओं के विपरीत आरंभिक समाजशास्त्रीय व्याख्याएं सामाजिक रूप से मान्य वास्तविकता पर आधारित हैं। आइए संक्षेप में हम इसे कार्ल मार्क्स, मैक्स वेबर और सेलेस्टिन बौगल के अध्ययन की रोशनी में समझें।

कार्ल मार्क्स के अनुसार सामाजिक समूहों के भूमि से संबंध और स्वामित्व से ही समाज में उनका स्थान तय होता था। उनके अनुसार भारतीय गांवों में दो प्रकार के समूह थे:

क) भूमि जोतने वाली जातियां

ख) कारीगर और चाकर जातियां

भूमि जोतने वाली जातियों ने बेशी उत्पादन किया। मार्क्स के अनुसार इस बेशी उपज को उन्होंने कारीगर जातियों को दिया। बदले में इन जातियों ने अपना पारंपरिक दस्तकारी का कुछ भाग उन्हें दिया। इस प्रकार दोनों जातियों ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति और आदान-प्रदान के लिए उत्पादन किया। इससे समाज में समरसता बनी रही। मगर इस 'ग्राम गणतंत्र' मॉडल को अयथार्थवादी करार देकर खारिज कर दिया गया है।

जातियों के शुद्धता स्तर के अनुसार पदानुक्रम में रखा जाता है।
साभार: किरणमई बुशी

बोध प्रश्न 1

1) कार्ल मार्क्स ने जाति की जो आरंभिक समाजशास्त्रीय व्याख्या पेश की थी, उसके बारे में पांच पंक्तियां लिखिए:

....

....

....

....

....

मैक्स वेबर की दृष्टि में जाति एक 'प्रस्थिति-समूह' है जिसके सदस्यों की पहचान उनके सामाजिक और आर्थिक स्थान से होती थी। इसमें उनके लिए एक खास जीवन-शैली अपरिहार्य थी। इस पर एक तरह का बंधन था क्योंकि परस्पर व्यवहार पर कुछ खास अंकुश लगे हुए थे, जिसकी परिधि में उनके काम-धंधे भी आते थे, जिन्हें करने की अनुमति उन्हें थी। जातियों के बीच संबंध 'पवित्रता' और 'अपवित्रता' की स्थितियों के बीच विद्यमान आनुष्ठानिक वैमनष्य से भी तय होता था। इसे व्यक्तियों या वस्तुओं से जोड़ कर देखा जाता था। यानी कौन व्यक्ति जाति के अनुसार छूत है या अछूत है। इस प्रकार, वर्ण क्रम-परंपरा में जातियों को उनकी पवित्रता यानी स्पृश्यता के पैमाने के अनुसार स्थान मिलता था। इसलिए ब्राह्मणों की स्पृश्यता या पवित्रता का स्तर सर्वोच्च समझा था क्योंकि वे पुरोहिताई जैसे 'साफ-सुथरे' कार्य करते थे। यह भी उतना ही महत्वपूर्ण था कि इस 'पवित्रता' को उन लोगों के स्पर्श से दूर रहकर कायम रखा जाए, जो अछूत थे। इसी कारण से वेबर ने तर्क दिया है कि जाति सामाजिक स्तरीकरण का एक चरम रूप है।

बौगल के अनुसार जाति की पहचान क्रम-परंपरा में उसके स्थान और उसके सदस्यों के पेशे से होती थी। अन्य किस्म की सामाजिक वर्जनाओं के थोपे जाने के कारण जतियां मर्यादा में बंधी रहती थीं। इस प्रकार समूहों के बीच क्रम-परंपरा और पार्थक्य भारतीय समाज की वे विशेषताएं थीं, जिन्होंने वर्ण क्रम-परंपरा में जाति की नियत प्रस्थिति को कायम रखा और उनके बीच पारस्परिक-व्यवहार का स्वरूप तय किया।

19.3 जाति का विशेषताबोधक सिद्धांत

आइए अब उन विद्वानों के नजरिए पर आते हैं जिन्होंने मार्क्स, वेबर और बौगल के आरंभिक विश्लेषण का प्रयोग कर एक ऐसे नजरिए को विकसित किया, जिसे हम *विशेषताबोधक सिद्धांत* कहते हैं। यह सिद्धांत मुख्यत: वर्ण-व्यवस्था के महत्वपूर्ण गुणों का विवेचन करता है और इसे सामाजिक स्तरीकरण के अन्य स्वरूपों से अलग दर्शाता है।

ये विशेषताएं वर्ण-व्यवस्था से जुड़े नैसर्गिक अहस्तांतरणीय गुण हैं। इसके अनुसार प्रत्येक जाति में इनमें से कुछ विशेषताएं अनिवार्य रूप से होनी चाहिए।

19.3.1 जी.एस. घुरये

सन् 1930 में जी.एस. घुरये ने जाति की व्याख्या प्रस्तुत की। उन्होंने हर जाति को क्रम-परंपरा की श्रेणी में एक-दूसरे से पृथक माना। यह श्रेणीकरण जाति के अपने सहजगुणों से उपजा। उनके अनुसार जाति के ये गुण इस प्रकार थे:

i) *सखंड विभाजन:* जाति समूह की सदस्यता जन्म से अर्जित होती है और इसी के साथ अन्य जातियों के तुल्य श्रेणी-क्रम में स्थान भी मिलता है।

ii) *क्रम-परंपरा* : इसके अनुसार समाज श्रेणी-क्रम या श्रेष्ठता या हीनता के संबंधों में व्यवस्थित था। इस प्रकार ब्राह्मणों को क्रम-परंपरा में सर्वोच्च और अछूतों को सबसे नीचे माना जाता था।

iii) *जाति वर्जनाएं*: ये वर्जनाएं हर जाति पर थोपी जाती थीं, जो अपने सदस्यों को कुछ खास समूहों से ही परस्पर-व्यवहार की अनुमति देती थी। इन वर्जनाओं में वेषभूषा, बोल-चाल, रीति-रिवाज, कर्मकांडों के अलावा खान-पान के नियम भी शामिल थे कि वे किस-किस के हाथ से भोजन स्वीकार कर सकते हैं। यह व्यवस्था समूह के सदस्यों की पवित्रता और इस तरह स्वयं जाति समूह की पवित्रता को बरकरार रखने के लिए बनाई गई थी।

iv) *जाति दूषण*: इस धारणा के तहत जाति का पूरा प्रयास दूषित करने वाली वस्तुओं से अपवित्र होने से बचना था। इस श्रेणी में गंदे काम-धंधा करने वाले व्यक्ति या कह लें सबसे निम्न जाति के लोग माने जाते थे। दूषण से बचने की इस प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति जाति समूहों के आवासीय पार्थक्य में होती है।

v) *पारंपरिक पेशा*: घुरये के अनुसार हर जाति का एक पारंपरिक पेशा था। पवित्र जातियां साफ-सुथरा पेशा करती थीं। जबकि मलिन और अछूत जातियां गंदा करने वाला पेशा करती थीं।

vi) *सगोत्र विवाह*: जातियों का यह अति विशिष्ट लक्षण था। यह उसे एक समूह के रूप में संगठित रखने के लिए जरूरी था जिससे कि उसकी अपनी विशिष्टता बनी रहे। इस का मूल उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि कोई भी सदस्य अपनी जाति से बाहर विवाह नहीं कर पाए।

इन छः सहज विशेषताओं के जरिए घुरये ने उस प्रक्रिया को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया था, जिसके माध्यम से एक जाति समूह अपनी पहचान को बनाए रखता था। सखंड विभाजन, क्रम-परंपरा, जाति वर्जनाओं, जाति दूषण, पारंपरिक व्यवयसाय और एक खास जाति समूह के अंदर विवाह के इन विशिष्ट लक्षणों को बरकरार रख कर जाति समूहों ने अपनी एक अलग पर एक-दूसरे से जुड़ी पहचान बनाए रखी, जिसे उन्होंने पीढ़ी-दर-पीढ़ी जारी रखा।

अभ्यास 1

जी.एस. घुरये ने जाति की जो विशेषताएं बताई हैं उन पर अपने सहपाठियों से चर्चा कीजिए और इस से आप को जो जानकारी मिलती है उसे अपनी नोटबुक में लिख लीजिए।

19.3.2 जे.एच. हटन

अपनी पुस्तक *कास्ट इन इंडिया* (भारत में जाति) में जे.एच. हटन ने जाति के ढांचे के बारे में बताया है। हटन के अनुसार सगोत्र-विवाह या अंतर्विवाह वर्ण-व्यवस्था की सबसे मुख्य विशेषता थी। इसी के इर्द-गिर्द नाना प्रकार की वर्जनाओं और प्रतिबंधों का ताना-बाना बुना गया था। विभिन्न जातियों पर जो वर्जनाएं थोपी गई हैं, उनका परस्पर व्यवहार में उल्लंघन कदापि नहीं होना चाहिए। वर्ण-व्यवस्था की एक और बड़ी विशेषता यह थी कि अपनी जाति से बाहर के व्यक्ति के हाथ से बना खाना खाने पर प्रतिबंध था। इन वर्जनाओं से इस तरह के प्रश्न उठते हैं:

i) भोजन कौन बनाता है?

ii) किस तरह के बर्तन में भोजन बनाया गया है?

iii) क्या भोजन 'कच्चा' (पानी में पका) यानी कच्ची रसोई का है या 'पक्का' (तेल में पका) यानी चोखी रसोई का है। चोखी रसोई का भोजन अन्य जातियों के हाथ से भी स्वीकार्य होता है।

iv) भोजन के मामले में भी एक क्रम-परंपरा बनी हुई है, जिसमें शाकाहार को मांसाहार से ऊंचा दर्जा दिया गया है। ब्राह्मण आम तौर पर शाकाहारी होते हैं, मगर सभी जगह नहीं। जैसे कश्मीर और बंगाल में ब्राह्मण मांसाहारी भी होते हैं।

ये सभी वर्जनाएं जातिगत पहचान की रचना की प्रक्रिया को दर्शाता हैं। ये जाति समूहों के बीच मौजूद पार्थक्य और क्रम-परंपरा को प्रतिबिंबित करती हैं। इसलिए भोजन को अन्य जाति के व्यक्ति से स्वीकार नहीं करना सामाजिक श्रेणी की श्रेष्ठता को दिखाता है। इस शुचिता को बनाए रखने और 'अपवित्रता' से दूर रहने की धारणा लोगों के आपसी व्यवहार में भी देखने को मिलती है।

उदाहरण के लिए दक्षिण भारत वे कुछ भागों में अपवित्र होने का भय शारीरिक दूरी में परिलक्षित होता है, जिसे श्रेष्ठ और निम्न जातियों के बीच कायम रखा जाता है। श्रेणी क्रम में निम्न समझी जाने वाली जातियों को गांव के मंदिर और कुओं से दूर रहना होता है और ऊंची जाति के लोगों से बातचीत करते समय उन्हें शारीरिक दूरी बनाए रखना होता है। हटन जातिगत पारस्परिक-व्यवहार को अंतर्विवाह, शुचिता और अपवित्रता की धारणा और सहभोजिता संबंधी वर्जनाओं के रूप में नजर आने वाली विशेषताओं रोशनी में व्याख्या करते हैं। यहां पर आप ने देखा होगा कि घुरये और हटन के सिद्धांतों में कुछ बातें समान हैं।

19.3.3 एम.एन. श्रीनिवास

इस चर्चा को आगे बढ़ाने से पहले यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि जो विद्वान गुण प्रधान नजरिए को लेकर चलते हैं, वे जाति के गुणों पर विशेष जोर देते हैं। मगर इस प्रक्रिया में हर विद्वान इस या उस गुण को अधिक महत्व देता है और बताता है कि ये गुण किस तरह लोगों के आपसी व्यवहार को प्रभावित करते हैं। मगर प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास ने 1950 के दशक में वर्ण-व्यवस्था का गहन विश्लेषण करके इन गुणों के आधार पर जातियों के बीच बनने वाले संबंधों के ढांचे का अध्ययन किया। उन्होंने बड़े ही प्रभावशाली ढंग से जातिगत पहचान के गतिशील पहलू को हमारे सामने रखा है।

स्थितिक गतिशीलता पर श्रीनिवास के अध्ययन में हमें यह पहलू स्पष्ट हो जाता है, जिसे हम संस्कृतीकरण कहते हैं। संस्कृतीकरण वह प्रक्रिया है, जिसमें एक जाति वर्ण क्रम-परंपरा में अपनी श्रेणी को उन्नत बनाने का प्रयत्न करती है जिसके लिए वह श्रेणी क्रम में अपने से ऊंची जाति या जातियों के गुणों को अपना लेती है। इसका यह मतलब है कि वह निम्न या हेय समझे जाने वाले गुणों को धीरे-धीरे त्याग देती है और ऊंची जातियों के गुणों की नकल करती है। इस नकल में शाकाहार, साफ-सुथरे काम-धंधे अपनाना शामिल है।

इससे प्रबल जाति की अवधारणा का गहरा रिश्ता है। किसी भी गांव में जो भी जाति प्रबल होती है वह हमें इन बातों में सबसे अलग नजर आ जाती है:

i) भारी संख्यात्मक उपस्थिति

ii) भूमि का स्वामित्व

iii) राजनीतिक सत्ताधिकार

इस प्रकार प्रबल जाति संख्या की दृष्टि से ही नहीं बल्कि आर्थिक और राजनीतिक सत्ताधिकार के मामले में भी महत्वपूर्ण ओहदा रखती है। यहां एक और रोचक बात है कि यह जरूरी नहीं कि प्रबल जाति गांव की जाति क्रम-परंपरा में सबसे ऊंचा स्थान रखती हो। यही नहीं, प्रबल जाति गांव में बची अन्य सभी जातियों से सेवा-चाकरी कराने का अधिकार भी रखती है।

बोध प्रश्न 2

1) एम.एन. श्रीनिवास ने जाति का जो विशेषताबोधक सिद्धांत रखा है, उसका सार दस पंक्तियों में लिखें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

19.4 जाति का अन्योन्य-क्रियात्मक सिद्धांत

यह सिद्धांत इस बात को लेकर चलता है कि स्थानीय अनुभव के स्तर पर जातियां एक दूसरे के सापेक्ष असल में किस-किस श्रेणी में होती हैं।

हमने अभी तक यह तो जान ही लिया है कि जाति के अध्ययन में हम किस प्रकार जाति के गुणों का प्रयोग कर सकते हैं। इससे आपको यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि गुणों का एक समुच्चय परस्पर-व्यवहार से जुड़ी प्रक्रियाओं का द्योतक होता है। इसलिए हम यह कदापि नहीं कह सकते कि गुणों का परस्पर व्यवहार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बल्कि हमें यह देखने को मिलता है कि परस्पर-व्यवहार के भी अपने गुणात्मक पहलू हैं। सो अब प्रश्न उठता है कि इन पहलुओं में से किसको अन्य से ज्यादा महत्व मिले और जाति की गतिकी और पहचान के सृजन के विश्लेषण में प्रमुखता दी जाए। जाति के अध्ययन में अन्योन्य-क्रियात्मक सिद्धांत की लीक पर जो भी प्रवर्तक अध्ययन कार्य अब तक हुए हैं, आइए उनमें से कुछ के बारे में जानें।

19.4.1 एफ. जी. बैली

बैली के अनुसार जाति की गतिकी और पहचान को पार्थक्य और क्रम-परंपरा के दो सिद्धांत जोड़ कर रखते हैं। उनका मानना है कि "जातियां आनुष्ठानिक और सांसारिक क्रम-परंपरा में अपनी-अपनी जगह लिए होती हैं, जिसकी अभिव्यक्ति परस्पर-व्यवहार के नियमों में होती है।" आनुष्ठानिक व्यवस्था राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था पर हावी रहती है।

बॉक्स 19.02

जातियों के बीच संबंध में सिर्फ अनुष्ठान ही नहीं होते। बल्कि उससे सत्ताधिकार का आयाम भी जुड़ा रहता है क्योंकि समाज में एक प्रबल जाति भी मौजूद होती है जिसके चलते अन्य जातियां उसकी अधीनस्थ होती हैं। जाति श्रेणी और जाति पहचान की अभिव्यक्ति तब होती है जब एक निम्न जाति अपने से ऊंची जाति की नकल करने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार आपसी व्यवहार का स्वरूप श्रेणी क्रम-परंपरा में *आनुष्ठानिक प्रस्थिति* का द्योतक बन जाता है। आपसी-व्यवहार के स्वरूप में वे सभी मनोवृत्तियां और प्रथाएं शामिल रहती हैं जिन्हें व्यक्ति भोजन, सेवा, जल, साथ-साथ धूम्रपान, भोजों पर बैठने की व्यवस्था और उपहारों का आदान-प्रदान इन सबको स्वीकार और अस्वीकार करने से जुड़े प्रश्न के मामले में अपनाते हैं।

बैली ने अपने विचार उड़ीसा के बीसीपाड़ा नामक गांव के संदर्भ में रखे हैं। उन्होंने यह बताया कि स्वतंत्रता के बाद क्षत्रियों के हाथों से अधिकांश जमीन निकल जाने से बीसीपाड़ा में जाति स्थिति किस तरह बदल गई। भूमि पर स्वामित्व खत्म हो जाने से आनुष्ठानिक श्रेणीकरण में भी उनका स्थान गिर गया। इससे आपसी-व्यवहार के उपरोक्त पहलुओं यानी अन्य जातियों से भोजन स्वीकार करना और न करना इस में भी स्पष्ट रूप से परिवर्तन आ गया।

19.4.2 ए. मेयर

मेयर ने मध्य प्रदेश के रामखेड़ी नामक गांव का अध्ययन किया। वर्ण क्रम-परंपरा के प्रभावों को समझने के लिए मेयर ने जातियों के बीच होने वाले आपसी-व्यवहार को इन बातों की रोशनी में देखा:

i) भोजन, पानी पीना और धूम्रपान में सहभोजिता–यानी भोजन, पानी और धूम्रपान साथ करना
ii) आदान-प्रदान में स्वीकार किए जाने वाला भोजन किस किस्म का है–वह 'कच्चा' है या 'पक्का'
iii) भोजन करने का अवसर–कोई अनुष्ठान या सामान्य अवसर
iv) भोजन के अवसर पर बैठने की व्यवस्था
v) भोजन कौन परोसता है और भोजन किसने बनाया है
vi) पानी का पात्र कैसा है–धातु का या मिट्टी का।

सहभोज क्रम-परंपरा इस विश्वास पर आधारित है कि उपरोक्त सभी कारको या इनमें से कोई भी एक कारक किसी भी जाति के लिए कम या ज्यादा दूषण का कारण बन सकता है, जिससे क्रम-परंपरा व्यवस्था में उसकी पहचान और श्रेणी प्रभावित होती है। अब इस क्रम-परंपरा के शीर्ष पर विद्यमान जाति यह सुनिश्चित करेगी कि उसे सिर्फ एक ही जाति के हाथों से भोजन या फिर इस किस्म का भोजन और जलपात्र मिले, जिससे वह अपवित्र न हो पाए। उदाहरण के लिए 'पक्का' भोजन निम्न जाति के हाथों से स्वीकार तो किया जाएगा मगर कच्चा भोजन सिर्फ अपनी जाति या उपजाति में ही स्वीकार्य होगा।

19.4.3 एम. मैरियोट

मैरियोट वर्ण क्रम-परंपरा का विश्लेषण स्थानीय संदर्भ की रोशनी में करते हैं। उन्होंने आनुष्ठानिक-व्यवहार में जाति श्रेणीकरण की व्यवस्था का अध्ययन किया। इस अध्ययन से मैरियोट भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि आनुष्ठानिक क्रम-परंपरा का आर्थिक और राजनीतिक क्रम-परंपराओं से चोली-दामन का साथ है। आम तौर पर आर्थिक और राजनीतिक श्रेणियां सम्पाती होती हैं। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो आनुष्ठानिक और गैर-आनुष्ठानिक क्रम-परंपराएं दोनों ही जाति-गण में श्रेणीकरण को प्रभावित करती हैं, हालांकि इसमें आनुष्ठानिक क्रम-परंपराएं बड़ी भूमिका अदा करती हैं। इस तरीके से जाति श्रेणीकरण को लेकर विभिन्न जातियों में एक तरह की आम सहमति सी बन जाती है जिसे सामूहिक रूप से उचित मान लिया जाता है और कायम रखा जाता है। यहां एक बात बताना जरूरी है कि यह प्रक्रिया उतनी स्पष्ट नहीं है जितनी कि पहली बार देखने में नजर आती है। इसकी वजह यह है कि समाजशास्त्री तब अध्ययन-क्षेत्र में उतरता है जब यह प्रक्रिया अपने पूर्ण रूप में विकसित हो चुकी होती है। इसकी ऐतिहासिक प्रक्रिया पर उसकी दृष्टि नहीं पड़ती और उसे अपने अध्ययन से जो भी जानकारी, आंकड़े इत्यादि मिलते हैं उन्हीं के आधार पर वह इसके निष्कर्ष निकालता है।

मैरियोट ने 1952 में उत्तर-प्रदेश के अलीगढ़ जिले के किशनगढ़ी और राम नागला नामक दो गांवों का अध्ययन किया। मैरियोट के अध्ययन से पता चलता है कि इन गांवों में जाति

श्रेणीकरण को लेकर आम-सहमति थी। यह निष्कर्ष उन्होंने गांव में *अनुष्ठान या आनुष्ठानिक-व्यवहार* को देखकर निकाला।

मैरियोट ने जिन दो गांवों का अध्ययन किया था, उनमें हम श्रेणी के निम्न महत्वपूर्ण सूचक पाते हैं:

i) भोजन दिया जाना और स्वीकार किया जाना

ii) सम्मानसूचक संकेतों (नमस्कार इत्यादि) का आदान-प्रदान और प्रथाएं

iii) ब्राह्मणों को सबसे ऊंचा स्थान हासिल है, क्योंकि वे बड़े महत्वपूर्ण या विशिष्ट कर्मकांडों को अंजाम देने का काम करते हैं। इसके साथ वे अन्य जातियों से सभी तरह की सेवाएं भी लेते हैं। ब्राह्मण लोग अन्य ऊंची जातियों से सिर्फ 'पक्का' भोजन ही स्वीकार करते हैं। इस तरह किसी जाति को तब ऊंचा माना जाता है जब ब्राह्मण उससे 'पक्का' भोजन स्वीकार करे। अगर ब्राह्मण उससे 'कच्चा' भोजन स्वीकार नहीं करे तो वह जाति निम्न समझी जाती है। किशन गढ़ी में इस तरह की दस और राम नागला में चार ऐसी ऊंची जातियां पाई गईं। सबसे छोटी जाति को किसी अन्य जाति से कोई सेवा नहीं मिलती। बल्कि वह सभी जातियों को अपनी सेवाएं देती है और उनसे 'कच्चा' भोजन भी स्वीकार करती है।

अभ्यास 2

मेयर और मैरियोट ने जाति श्रेणी के जो महत्वपूर्ण सूचक बताएं हैं, उन पर अपने मित्रों और सहपाठियों से चर्चा करें। उससे आपको जो भी जानकारी मिलती है उसे अपनी नोटबुक में लिखें।

इस प्रकार भोजन और सेवाएं कैसे दी जाती हैं और स्वीकार की जाती हैं, ये सब जाति श्रेणीकरण के महत्वपूर्ण सूचक हैं। मगर मैरियोट ने इनके अलावा भी निम्न मामलों में भी ऐसे नियम देखें:

i) साथ-साथ बीड़ी-सिगरेट या हुक्का पीना,

ii) घरों का विन्यास और दिशा

iii) नियुक्तियां और शारीरिक संपर्क

iv) सहभोज और भोजन परोसे जाने का क्रम

किशन गढ़ी में राजनीतिक और आर्थिक प्रभुत्व आनुष्ठानिक क्रम-परंपरा के बराबर ही था। आइए अब देखें कि आनुष्ठानिक प्रस्थिति और आर्थिक शक्ति (भूमि स्वामित्व) किस तरह से अतिव्यापान करते हैं:

किशनगढ़ी में जाति श्रेणी और भू-स्वामित्व
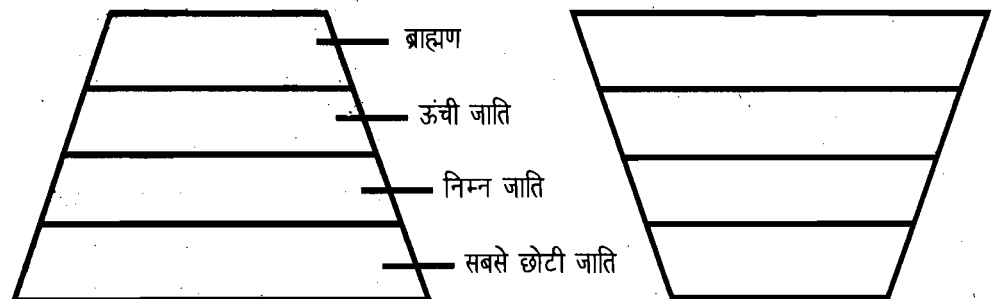
जातियों में अमूमन अपनी राजनीतिक और आर्थिक *प्रस्थिति* को अनुष्ठानिक *प्रस्थिति* में बदलने की प्रवृत्ति हावी रहती है। मगर वहीं जाति क्रम-परंपरा के ढांचे में कुछ असंगतियां

भी रहती हैं, जिससे सामाजिक गतिशीलता की संभावना बनती है। हालांकि यह बात सही है कि आपसी-व्यवहार स्थानीय जाति श्रेणी का निर्धारण करने के लिए महत्वपूर्ण है लेकिन इसमें दूसरे गांवों का संदर्भ भी सहायक हो सकता है। आनुष्ठानिक क्रम-परंपरा मोटे तौर पर राजनीतिक और आर्थिक श्रेणी के संगत नजर आती है। परस्पर-व्यवहार एक प्रदत्त श्रेणी-गण को कायम रखता है, जिसे हम ऊपर बताए गए विभिन्न तथ्यों में देख सकते हैं।

19.4.4 एल. द्युमोंत

अन्योन्य-क्रिया धर्मी परिप्रेक्ष्य में जाति के अध्ययन में द्यूमोंत ने एक नया आयाम जोड़ा। उन्होंने वर्ण-व्यंवस्था का जो अध्ययन किया है वह जातियों के सहजगुणों के बजाए उनके बीच विद्यमान संबंधों को केन्द्र बनाकर चलता है। गुणों को हम विभिन्न जातियों के बीच मौजूद संबंध के संदर्भ में ही समझ सकते हैं। द्युमोंत के अनुसार स्थानीय संदर्भ की जाति श्रेणीकरण और पहचान में भूमिका जरूर है। लेकिन यह भूमिका समूची वर्ण-व्यवस्था को अपने प्रभाव में समेटने वाली जाति क्रम-परंपरा की विचारधारा के प्रत्युत्तर में आती है। द्युमोंत जाति को आर्थिक, राजनीतिक और नातेदारी की व्यवस्थाओं के संबंधों का समुच्चय मानते हैं, जिन्हें मुख्यतः धार्मिक मूल्य बनाए रखते हैं। द्युमोंत के अनुसार जाति एक विशेष किस्म की असमानता है और क्रम-परंपरा ही वह अनिवार्य मूल्य है जो वर्ण-व्यवस्था के मूल में निहित है। यही मूल्य हिन्दू समाज को जोड़ कर रखते हैं।

द्युमोंत कहते हैं कि जाति के विभिन्न पहलू पवित्र और अपवित्र के बीच विरोध के सिद्धांत पर आधारित हैं। पवित्र अपवित्र से श्रेष्ठ है और इसलिए उसे पृथक रखा जाना चाहिए। *पवित्र और अपवित्र में विरोध के कारण ही वर्ण-व्यवस्था लोगों को तर्कसंगत दिखाई देती है।*

द्युमोंत का यह भी मानना है कि वर्ण-व्यवस्था में क्रम-परंपरा आनुष्ठानिक प्रस्थिति का द्योतक है जो धन-दौलत या सत्ताधिकार के प्रभावों से स्वतंत्र रहती है। अतः क्रम-परंपरा वह सिद्धांत है, जिसके माध्यम से वर्ण-व्यवस्था के तत्व श्रेणीबद्ध रहते हैं। श्रेणीकरण का स्वरूप मूलतः धार्मिक होता है। भारतीय समाज में प्रस्थिति (ब्राह्मण) को हमेशा सत्ता (राजा) से पृथक करके रखा गया हैं। दूसरे शब्दों में सत्ताधिकार को प्रस्थिति या प्रतिष्ठा से गौण माना जाता है। इसीलिए राजा पुरोहित का अधीनस्थ होता है। मगर दोनों एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। इस प्रकार क्रम-परंपरा स्वभाव से आनुष्ठानिक है और धर्म उसे आधार देता है। जब सत्ता को प्रस्थिति का अधीनस्थ बना दिया ज़ाता है, तभी इस प्रकार की शुद्ध क्रम-परंपरा विकसित हो सकती है। इसलिए पवित्रता का द्योतक ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है और वह समूची वर्ण-व्यवस्था के शीर्ष पर विराजमान रहता है। मगर ब्राह्मण राजा के साथ मिलकर वर्ण व्यवस्था की सभी अन्य जाति श्रेणियों का विरोध करता है।

द्युमोंत आर्थिक व्यवहार की जजमानी प्रथा को आर्थिक प्रबंध की बजाए एक आनुष्ठानिक अभिव्यक्ति मानते हैं। उनके अनुसार जजमानी प्रथा परस्पर-निर्भरता की धार्मिक अभिव्यक्ति है, और यह परस्पर-निर्भरता भी अपने-आप में धर्म से उत्पन्न होती है। इसी प्रकार सहभोजिता के नियम पार्थक्य के बजाए क्रम-परंपरा को ही प्रतिष्ठित करते हैं। मगर सुचिता का प्रश्न सहभोजिता के सभी अवसरों पर नहीं उठता। इसीलिए धोबी 'परिमार्जक' होता है और वह घरों में स्वतंत्रता से आ-जा सकता है। परंतु वहीं वह उन जातियों के विवाह समारोह में भाग नहीं ले सकता, जिनसे उसका इस तरह का संबंध होता है। आइए अब विशेषताबोधक और अन्योन्य-क्रियात्मक सिद्धांतों की तुलना करें।

बोध प्रश्न 3

1) द्युमोंत के अन्योन्य-क्रियात्मक जाति श्रेणीकरण सिद्धांत के बारे में 10 पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

19.5 विशेषताबोधक और अन्योन्य-क्रियात्मक सिद्धांतों का मूल्यांकन

अब हम इस स्थिति में हैं कि हम दोनों सिद्धांतों में पाई जाने वाली विसंगतियों के बारे में बता सकें। इस सिलसिले में आइए सबसे पहले विशेषताबोधक सिद्धांत पर आते हैं।

i) एम. मैरियोट बताते हैं कि किशन गढ़ी में जिन-जिन जातियों का अध्ययन उन्होंने किया था उनमें से कुछ जातियों को सामाजिक क्रम-परंपरा में उनके गुणों के कारण स्थान नहीं मिला था। उन्होंने पाया कि खान-पान और व्यवसाय संबंधी वर्जनाएं कुछ मामलों में जाति श्रेणी या पहचान का निषेध नहीं करती थीं।

ii) इसके अलावा किशन गढ़ी में जातियों को जो स्थान हासिल था वह उनके पेशे की श्रेष्ठता और हीनता से नहीं आया था। इसलिए वास्तविकताएं सिद्धांत के अनुरूप नहीं पाई गईं।

iii) असल में किसी भी जाति के गुणधर्म और समाज में उसे प्राप्त श्रेणी में काफी विसंगतियां पाई जाती हैं। इसलिए श्रीनिवास ने मैसूर के जिस गांव का अध्ययन किया था इसमें बनिया जाति शाकाहारी थी और उसका पेशा भी किसानों की तुलना में अधिक साफ-सुथरा था। पर इसके बावजूद किसानों की श्रेणी बनियों से ऊंची थी।

iv) इसके अलावा इस सिद्धांत में एक समस्या यह भी उठती है कि जातियों को श्रेणियों में बांटने में किस गुणधर्म का महत्व अधिक है और किसका कम।

विशेषताबोधक सिद्धांत की इन विसंगतियों को देखते हुए ही उसके विकल्प में अन्नोन्य-क्रिया का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया। मगर इस सिद्धांत की भी अपनी कमजोरियां हैं, जो इस प्रकार हैं:

i) अन्योन्य-क्रिया का सिद्धांत सहजगुणों के महत्व को अपने में समेट लेता है। इसीलिए सहजगुणों की बात कहे बिना हम सिर्फ अन्योन्य-क्रिया के आधार पर श्रेणी का निर्धारण नहीं कर सकते।

ii) द्युमोंत के अलावा, अन्योन्य-क्रिया का सिद्धांत क्रम-परंपरा को स्थानीयता के दायरे में सीमित कर देता है और कहता है कि जाति श्रेणीकरण अन्योन्य-क्रिया का परिणाम

है। इसलिए इसमें क्रम-परंपरा के बजाए पार्थक्य को विशेष बल मिलता है। द्युमोंत का मानना है कि पवित्रता और अपवित्रता की विचारधारा समूचे हिन्दू समाज से जुड़ी है न कि उसके किसी एक हिस्से से।

iii) द्युमोंत का अध्ययन कार्य काफी हद तक ऐतिहासिक है और वह यह मानकर चलते हैं कि वर्ण-व्यवस्था सदियों से स्थिर रही है, जो कि सत्य नहीं है।

iv) द्युमोंत हालांकि 'सत्ताधिकार' और 'प्रस्थिति' को स्पष्टतया अलग करके देखते है, पर वहीं यह तर्क भी मिलता है कि सत्ताधिकार को इतिहास की दृष्टि से प्रस्थिति में परिवर्तित कर दिया गया है।

v) अंततोगत्वा जाति के बारे में कहना कि यह मूल्यों (विचारधारा) की सर्वत्र स्वीकृत क्रमबद्ध व्यवस्था है, वह उन विरोध आंदोलनों के साथ न्याय नहीं करता जो जाति विभाजन पर सवालिया निशान लगाते हैं। वर्ण-व्यवस्था में निहित द्वंद्व तो इस सिद्धांत में लुप्त है, लेकिन वहीं इसमें जाति के समाकलनात्मक प्रकार्य यानी समाज को एकता के सूत्र में बांधने में जाति जो भूमिका अदा करती है, उसे अधिक महत्व दिया गया है।

19.6 सारांश

इस इकाई में हमने जाति श्रेणी और जातिगत पहचान के विभिन्न पहलुओं के बारे में जाना। इसके शुरू में हमने जाति की धार्मिक और समाजशास्त्रीय व्याख्याओं समेत उसकी आरंभिक व्याख्याओं पर रोशनी डाली। इसके पश्चात हमने घुरये, हटन और श्रीनिवास जैसे समाजशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित विशेषताबोधक सिद्धांत के बारे में आपको अवगत कराया। फिर हमने जाति श्रेणीकरण और पहचान की व्याख्या के लिए अन्योन्यक्रिया के वैकल्पिक सिद्धांत के बारे में बताया जिसमें बैली, मेयर, मैरियोट और द्युमोंत के अध्ययन कार्य शामिल किए गए। इसके बाद हमने दोनों सिद्धांतों का मूल्यांकन किया और देखा कि दोनों में कुछ न कुछ समस्याएं हैं। मगर इससे इतना स्पष्ट तो हो ही जाता है कि हमने जिन अध्ययन कार्यों की चर्चा इस इकाई में की है वे जाति क्रम परंपरा और श्रेणीकरण की आरंभिक धार्मिक और समाजशास्त्रीय व्याख्याओं से बेहद उन्नत हैं।

19.7 शब्दावली

सहजगुण : गुण और रूपाकार

सहभोजिता : साथ बैठकर भोजन करना

प्रबल जाति : वह जाति जो किसी गांव में अपनी आर्थिक और राजनीतिक शक्ति के कारण प्रभावशाली है।

सगोत्र विवाह : एक जाति समूह विशेष के भीतर विवाह रचाना

विचारधारा : विचारों की एक सुसंगत धारा

जजमानी प्रथा : प्रबल जातियों पर आश्रित जातियों द्वारा उन्हें आनुष्ठानबद्ध, निजी, विशिष्ट सेवाएं प्रदान करने का रिवाज

कच्चा भोजन : ऐसा खाना जो कच्चा या पानी में पका हो

पक्का भोजन : ऐसा खाना जो घी या तेल में बना हो

दूषण : गंदी वस्तुओं या जातियों के संपर्क में आने से उत्पन्न होने वाली स्थिति

पवित्रता : आनुष्ठानिक स्वच्छता या सभी दूषित करने वाली वस्तुओं और व्यक्तियों से मुक्त रहने की दशा

19.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

दयुमोंत, एल. 1970, *होमो हायर्किकस,* शिकागो, यूनि. ऑव शिकागो प्रेस

मदान, टी.एन. (संपा.) 1971 "ऑन द नेचर ऑव कास्ट इन इंडिया" *कांस्टीट्यूशनल्स टू इंडियन सोशियोलाजी*

मैंडलबौम, डी.जी. 1987, *सोशियोलजी इन इंडिया,* बंबई पॉपुलर प्रकाशन

मैरियॉट, एम. "इंटरेक्शनल एंड एट्रीब्यूशनल थ्योरीज ऑव कास्ट रैंकिंग", *मैन इन इंडिया* (खंड 34, अंक 2)

श्रीनिवास, एम.एन. 1966, *सोशल चेंज इन इंडिया,* बर्कले, यूनि. ऑव कैलिफोर्निया प्रेस

19.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) जाति की आरंभिक समाजशास्त्रीय व्याख्याएं इसलिए उल्लेखनीय हैं कि वे ठेठ धार्मिक व्याख्याओं से अलग हटकर चलती हैं। इसलिए कार्ल मार्क्स के अध्ययन से हमें पता चलता है कि भूमि स्वामित्व का संबंध समाज में किसी भी जाति-समूह की स्थिति को निर्धारित करता है।

बोध प्रश्न 2

2) श्रीनिवास जाति को एक सखंड व्यवस्था के रूप में देखते हैं। उनके अनुसार सभी जातियां उप-जातियों में बंटी हैं जो i) सगोत्र विवाह करती हैं, ii) एक पेशा करती हैं, iii) एक सामाजिक और आनुष्ठानिक जीवन की इकाई होती हैं, v) एक ही संस्कृति को मानती हैं और vi) ग्राम सभा या पंचायत द्वारा शासित रहती हैं। श्रीनिवास ने क्रम-परंपरा, जातिगत व्यवसाय, सहभोजिता और वर्जनाओं के कारकों, दूषण के सिद्धांत और जाति पंचायतों को भी अपने अध्ययन में लिया है। श्रीनिवास ने संस्कृतीकरण की जो धारणा प्रस्तुत की है, उसके अनुसार छोटी जाति श्रेणीकरण की प्रणाली में उच्च स्थान प्राप्त करने के लिए ऊंची जाति के गुणों को अपनाती हैं।

बोध प्रश्न 3

1) दयुमोंत के अनुसार पवित्रता और दूषण की विचारधारा एक सामान्य विचारधारा है जो किसी एक स्थान के संदर्भ तक सीमित नहीं है। उनके अनुसार जाति आर्थिक, राजनीतिक और नातेदारी व्यवस्थाओं के बीच विद्यमान संबंधों का समुच्चय है। क्रम-परंपरा वर्ण-व्यवस्था के मूल में निहित मूल्य है और यही मूल्य हिन्दू समाज को एक करते हैं। पवित्र अपवित्र से श्रेष्ठ है और उसे पृथक रखा जाना जरूरी है। दयुमोंत के अनुसार सत्ताधिकार प्रस्थिति का अधीनस्थ है और इसीलिए राजा पुरोहित से नीचे होता है। इस प्रकार क्रम-परंपरा आनुष्ठानिक होती है और उसे धर्म आधार प्रदान करता है।